1381 c

श्रीः

विभूतिधारणविचारः

वेदरत्न, निरुक्तभूषण, साहित्यालङ्कार, व्याकरण-
शिरोमणि, विद्याभास्कर, व्याख्यानवाचस्पती-
त्यादिविविधविरुदावलिविभूषितेन

अयोध्यक बड़ास्थान-श्रीमदाचार्य्यश्री १०८
राममनोहरप्रसादाचार्य्य महाराज-पादपद्म-
रजः-प्रसादितेन

-(:)-

त्रिवेदोपाह्व

ब्रह्मचारि-श्री भगवदाचार्य्येण

सम्पादितः

द्वितीयावृत्तिः } प्रति { मूल्यम्
सन्-१९३३ } १००० { =)
श्रीरामानन्दाब्द ६३३,

श्रीसीताराम प्रेस, अयोध्याजी।

श्रीमते रामानन्दायनमः

विभूतिधारण-विचार

रामानन्दपदद्वन्द्वकञ्जकिञ्जलकमुज्ज्वलम् ।
अभङ्गमङ्गलं कुर्यान्मङ्गलं नो गतार्गलम् ॥१॥
विभूतिधारणे देहे विवादाः समुपस्थिताः ।
तत्र तत्त्वविचाराय निबन्धोऽयं प्रतन्यते ॥२॥

श्रीरामानन्दसम्प्रदायाभिमानि सत्पुरुषोंसे मैं एक लघु प्रार्थना करके इस निवन्धका आरम्भ करूँगा। आज अपने सम्प्रदायमेंसे विवेकका साम्राज्य उठ सा गया है। कोई किसी वस्तुका वास्तविक विचार करना ही नहीं चाहता। सबके सब नहीं तो अधिकांश श्रीरामानन्दीय तो अवश्य ही चाटूक्ति (चापलूसी) के प्रेमी बन गये हैं। जो उन्हें अच्छा कह दे, या उनकी हां में हां मिला दे,

वही सर्वश्रेष्ठ और विद्वान् मान लिया जाता है। सम्प्रदाय में से विद्या तो उठ ही गई है—उसकी कसौटी कौन करे?

आज श्रीरामानन्दसम्प्रदायमें कुछ लोग ऐसे हैं जो यह चाहते हैं कि श्रीरामानन्दसम्प्रदाय श्रीरामानुजसम्प्रदायके अन्तर्गत हो माना जावे। परन्तु इस चाहनेमें क्या हेतु है, इसे सत्यतापूर्वक नहीं बताया जाता। इधर उधर के कुछ भ्रान्त प्रमाण रखकर यद्वा तद्वा कहा जाता है। इस पक्षके जितने भी भाई हैं सब अपनी २ पुस्तकोंमें मुझे गाली देनेके अतिरिक्त कोई ऐसी वस्तु नहीं लिखते हैं जिसपर मैं कुछ भी विचार कर सकूं और अपने सम्प्रदायकेलिये कोई आवश्यक सूचना करसकूं। इन विरोधी लेखकोंका केवल यही आशय रहता है कि सम्प्रदायके विरक्त वैष्णव ब्रह्मचारीसे अपरक्त (रुष्ट) हो जावें तो सबके सब स्वयं ही श्रीरामानुजसम्प्रदाय में मिल जावेंगे। श्रीरामानुजसम्प्रदाय में क्यों मिल जाना चाहिये वह न तो ठीक २ बताना चाहते हैं और न बता सकते हैं।

—

क्या अर्थ है?

श्रीरामानुजसम्प्रदायमें श्रीरामानन्दसम्प्रदाय मिल जावे, इसका क्या अर्थ है? जिस समय ये दोनों सम्प्रदाय

मिले हुए माने जाते थे तब श्रीरामानन्दसम्प्रदायमें कौन सा उत्कर्ष था और आज अलग होने पर कौन सा अपकर्ष हुआ है ? तब भी श्रीरामानुजीय बन्धु श्रीरामानन्दीयों से भेदमात्र रखते थे आज भी रखते हैं। दोनों की उपासना और मन्त्र तब भी पृथक् थे, आज भी पृथक् हैं। दोनों सम्प्रदायोंके इष्टदेव प्रथम भी भिन्न २ नाम वाले थे और आज भी वैसे ही हैं। पूर्व में भी जन-गणना (मर्दुमशुमारी) के समय अथवा किसी मुक़द्दमा आदिमें सर्व श्रीरामानन्दीय अपनेको रामानन्दी साधु लिखाते थे और आज भी ऐसे ही लिखाते हैं। किसी भी दृष्टिसे यह नहीं सिद्ध किया जा सकता है कि जब दोनों सम्प्रदाय सम्मिलित माने जाते थे तब अमुक लाभ और उत्कर्ष श्रीरामानन्द सम्प्रदायको प्राप्त था और आज नहीं है। यह भी ठीक २ नहीं बताया जाता है कि अपने को श्रीरामानुजीय कहलेनेके पश्चात् श्रीरामानन्दियों का क्या कर्तव्य होना चाहिये ? क्या वह श्रीरामानुजीयोंके समान ही कण्ठीपरित्याग करदें या तिलकों की विभिन्नता मिटाकर केवल रक्त श्रीयुक्त ही ऊर्ध्वपुण्ड्र करें, या वर्णाश्रमधर्म का पालन करें, वा श्रीराममन्त्र को छोड़ २ कर श्रीनारायण मन्त्र लें या इससे भिन्न अन्य श्रीरामानुजीय साम्प्रदायाचार का पालन करें। ऐसी अन्धकारमयी स्थितिमें भी ये भाई

श्रीरामानन्द सम्प्रदायको अनिश्चित दिशामें घसोटना चाहते हैं।

आश्चर्य तो यह है कि ये लोग श्रीरामानन्दियोंको श्रीरामानुजीय कहला कर भी श्रीरामानुजीय आचार-व्यवहारसे पृथक् रखना चाहते हैं। मैं यह चाहता हूँ कि चाहे कोई भी सम्प्रदाय चाहे जिस रेखाके भीतर खड़ा रहे, परन्तु जिस रेखाके भीतर रहे उसके नियत आचार व्यवहारको प्राण-पण से पालन करे। यदि श्रीरामानन्दीय श्रीरामानुजीय पक्षमें जाना चाहें तो वह जा सकते हैं परन्तु तब वह श्रीरामानुजीय ही हो सकते हैं श्रीरामानन्दीय नहीं। श्रीरामानुजीयत्व और श्रीरामानन्दीयत्व दोनों विरुद्ध धर्म हैं। एक अधिकरणमें नहीं रह सकते। सूर्यवंशीयत्व और रघुवंशीयत्व ये दोनों विरुद्ध धर्म नहीं हैं क्योंकि दोनों बंशों का सदाचार सर्वथा एक ही है -समान ही है। परन्तु यहां श्रीरामानुज सम्प्रदाय और श्रीरामानन्द सम्प्रदाय पृथक् २ नियमों और आचार-व्यवहारोंके भीतर अपना जीवन चक्र चला रहे हैं। अतः अपनेको रामानन्दीय कहलानेकी इच्छा वाला रामानुजीय नहीं बन सकता एवम् रामानुजीय कहलानेकी इच्छावाला रामानन्दीय नहीं बन सकता। दोनों सम्प्रदायोंकी दो दिशाएँ हैं। केवल विशिष्टाद्वैत-वेदान्तमत एक होने से ये दोनों सम्प्रदाय एक

नहीं हो सकते। जब तक सब भेद मिटाकर एक न कर दिये जावें, जब तक श्रीरामानुजीय भी अपनेको श्रीरामानन्दीय न कहने लगजावें, जब तक नारायण मन्त्र और नारायण देवको सर्वोत्कृष्ट बतानेवाले और राममन्त्रकी अवहेलना करनेवाले ग्रन्थ अग्निसात् न कर दिये जावें और जब तक श्रीरामानन्दियोंको समान पद और प्रतिष्ठा न दी जावे तब तक इन दोनों सम्प्रदायोंको एक करने की आशा केवल आशा मात्र है।

मैं श्रीरामानन्दीय बन्धुओंसे प्रार्थना करता हूं कि वह बहुत दूर तक चले आये हैं। स्वाश्रयी जीवन बिताने का अभ्यास होने लग गया है। श्रीरामानन्द सम्प्रदायका गौरव अब सब साम्प्रदायिक समझने लग गये हैं। आपने अपने साम्प्रदायिक जीवन को भयङ्कर बिपत्तिमेंसे बचा लिया है। अब पुनः उसका स्मरण भी न करें। आगे २ बढ़ते जाइये। सम्प्रदायमें विद्या और भक्ति दोनों को समान तुलापर चढ़ाये रखिये। हमारा विजय है। संसार एक वार पुनः आपके चरणोंमें झुकेगा। आप बिरक्त हैं, इस तत्त्वको कभी भूल मत जाइयेगा। जिस दिन हम इस तत्त्वको भूल जावेंगे उस दिन अवश्य ही हमारा पतन होगा।

कुछ उच्छृङ्खल और विवेक शून्य भाई तपस्वी महात्माओंको मेरे विरुद्ध भड़कानेकेलिये कितने ही अनर्गल प्रयत्न करते रहते हैं। पुस्तकों द्वारा, विज्ञापनोंद्वारा अथवा समय २ पर उनसे मिलकर उनको मीठी २ बातें सुनाकर मेरे विरुद्ध बनाये रखने का सतत प्रयत्न करना उन भाइयोंका स्वभाव हो गया है। तपस्वी महात्मा अपने भोलेपनसे उधर ही ढुल जाते हैं जिधर उन्हें मीठी मीठी बातें सुनने को मिलें। मैं मीठी २ बातोंके बनाने का अभ्यासी नहीं हूँ। कोई प्रसन्न रहे अथवा अप्रसन्न; परन्तु मैं वही वस्तु कहना चाहता हूँ कि जो उनके लाभकी हो, मेरे लाभ की हो और सम्प्रदायके लाभ की हो। प्रिय और हित दोनों का, एक ही बात में होना दुर्घट है। अतः मैं सर्वदा निर्भीक होकर सम्प्रदायके शुभ कामसे प्रेरित होकर सत्यको ही प्रकाशित करते रहना अपना धर्म समझता हूँ। जब मुझसे कहीं कोई भूल होती है और कोई मुझे सुझा देता है तो मैं उसे स्वीकार करनेमें कभी भी आगा पीछा नहीं करता हूं।

श्रीरामानन्ददिग्विजयकी भूमिकामें मैंने जटा और विभूति धारणको असाम्प्रदायिक बतानेका प्रयास किया है। उसे लेकर मेरे विरोधियोंने तिलका ताड बनाडाला।

इसकी सूचना जब मुझे मिली, तो मैंने कई दिनों तक इस विषयपर एकान्तमें बिचार करता रहा। मुझे साम्प्रदायिक एक भी ऐसा प्रमाण नहीं मिला जिससे मैं यह दृढ़तापूर्वक कह सकूं कि जटा-विभूति साम्प्रदायिक वस्तु है। इस बिषयमें जैसा मेरा पूर्वमें विचार था वैसा ही आज भी है। परन्तु मैंने सोचा कि यद्यपि साम्प्रदायिक प्रमाण नहीं हैं, तो भी यदि यह जटा-विभूति हमारे सम्प्रदायमें रह जावे तो आपत्तियां क्या २ हैं। इस पर भी मैंने खूब मनन किया और दो एक साधारण दोषकेअतिरिक्त कोई बहुत बड़ा दोष मुझे आज तक नहीं सूझ सका। मैंने उस समय विभूतिधारण विचार एक छोटी सी पुस्तक लिख कर श्रीवैष्णवोंके हाथोंमें पहुंचा दी। मैंने उसमें स्पष्ट लिख दिया है कि मैं यह सर्वथा नहीं मानता हूं कि श्रीरामानन्द स्वामीजी जटाधारी और विभूतिधारी थे। परन्तु श्रीवैष्णवोंमें यदि यह प्रथा रहजावे तो बहुत हानिकारक नहीं ही है। उसी विभूतिधारण विचारका यह द्वितीय संस्करण है। इसे मैं नये रूप में लिख रहा हूँ। आशा है कि इस पुस्तकसे हमारे बन्धुओंको लाभ होगा।

पूर्वपीठिका

इस पूर्वपीठिकामें मैं यह बताऊँगा कि किन किन

ग्रन्थोंमें इस जटा-विभूतिके लिये क्या २ लिखा गया है। प्रथम मैं श्रीरामानुज सम्प्रदायके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सच्चरित्र-रक्षा' को लेता हूं। बेङ्कटेश्वर प्रेस मुम्बई में वि०सं०१९६६ में छपे हुये पुस्तक के ६३ वें पृष्ठ से भस्मके सम्बन्धमें एक शास्त्रार्थ चलाया गया है। उसका भाषार्थ मैं यहां देता हूं।

प्रश्न—भस्म भी शुद्धतम द्रव्य है अतः ऊर्ध्वपुण्ड्र के धारण करनेमें उसे भी मुख्य मानना चाहिये (अर्थात् भस्मसे भी ऊर्ध्वपुण्ड्र करना चाहिये।)

उत्तर—नहीं। भस्म स्वतः शुद्धतम द्रव्य नहीं है। क्योंकि जहांपर भस्म पड़ी हुई होती है उस भूमिको शुद्ध करनेकेलिये, द्रव्यशुद्धि प्रकरणमें (शास्त्रों में) वैसे ही विधान किया गया है जैसे कि उस भूमिको शुद्ध करने की विधि बताई गई है जिसमें कि चाण्डाल आगया हो। (अर्थात् चाण्डालसे छू जाना और भस्मसे छू जाना दोनों बराबर ही है।) यदि भस्म शुद्धद्रव्य होता तो वह जहां पड़ा हो उसकी शुद्धि क्यों लिखी जाती? शुद्ध वस्तु छू जाने पर तो कहीं भी शुद्धि नहीं बताई गई है। भस्म अशुद्ध वस्तु है इसमें प्रमाण भी सुनिये:—

दीपाग्निर्दीपतैलं च भस्म चास्थि रजस्वलाम् ।
एतानि ब्राह्मणः स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ।।

शङ्खस्मृति

अर्थ—दीपककी अग्नि, दीपकका तैल, भस्म, हड्डी, और रजस्वला स्त्री, इन सबको यदि कोई ब्राह्मण छू ले वो पहिने हुये सब वस्त्रोंके सहित स्नान करे ।

गौतमजीने लिखा है कि 'भस्म, तुष (भूसा, छिलका आदि) कपाल (खोपड़ी) तथा अन्य अमेध्य (अपवित्र) वस्तुका संपर्क न करे । ऐसेही आपस्तम्बजीने भी कहा है कि 'भस्म और तुषका संपर्क न करे या उसपर न बैठे' पैरसे पैर न धोवे और पैरपर पैर रख कर न बैठे । इन सब प्रमाणोंके देखने से यह सिद्ध होता है कि केश, तुष, कपाल आदि अशुद्ध वस्तु हैं और उन्हीं के साथ भस्मको भी गिनाया है अतः भस्मभी अशुद्धही वस्तु है, शुद्ध नहीं ।

प्रश्न—आपने कहाकि अशुद्ध वस्तु के साथ भस्मका नाम गिनाया है अतः भस्म अशुद्ध है । परन्तु शास्त्रमें तो भस्मका शुद्ध वस्तुके साथ भी नाम गिनाया गया है । यथाः—'भस्मकरीषच्छायासु मूत्रं न विसृजेत्' अर्थात् भस्म, करीष और छायामें लघुशङ्का न करे । यहाँपर करीष उत्तम वस्तु है उसके साथ भस्म का नाम गिनाया गया है । तो भस्म अच्छा ही वस्तु सिद्ध होता है ।

उत्तर-तुम्हारा कहना ठीक नहीं है। करीष भलेही शुद्ध द्रव्य मानलिया जावे परन्तु छायाको तो शुद्ध द्रव्य किसीने नहीं कहा है। किञ्च स्नुहि और करञ्ज आदि वृक्षों की छाया अप्रशस्त-निकृष्ट ही है अतः भस्म स्वतः अशुद्ध ही है।

प्रश्न-'आग्नेयं भस्मना स्नानं वायव्यं गोरजःस्मृतम्' अर्थात् भस्मसे किया गया हुआ स्नान अग्निस्नान कहा जाता है और गोधूलसे किया गया हुआ स्नान वायुस्नान कहा जाता है। ऐसी शास्त्रकी आज्ञा है। यदि भस्म अशुद्ध द्रव्य है तो उससे स्नान करना क्यों कहागया ?

उत्तर--स्नान विधान करने से यह सिद्ध नहीं हुआ कि भस्म भी स्वतः शुद्धद्रव्य है। उसका तो वस्तुतः इतना ही तात्पर्य है कि जो मनुष्य मुख्य स्नानादि करने में असमर्थ हो वह गौण स्नान भी करले। यह नियम थोड़ा ही है कि कहीं कोई वस्तु शोधकके रूपमें लिखी हो तो वह सर्वत्र ही शुद्ध मानी जावे। ऐसा नियम बनानेमें बड़े २ दोष आवेंगे। यथा, शास्त्रमें लिखा है किः-सुरापीनेवाला पुरुष गीले कपड़े पहिन कर अग्निवर्ण सुराको पीकर प्रायश्चित्त करे। यदि किसी प्रसङ्गमें किसी शोधक द्रव्यको सर्वत्र शुद्ध मान लोगे तो सुरापीनेवाले को शुद्ध करने

वाली अग्निवर्ण सुराभी सर्वत्र शुद्ध माननी पड़ेगी, जो किसीको भी इष्ट नहीं है। ऐसे ही यदि ब्रह्मचारी काम वश मैथुनमें प्रवृत्त हो तो उसकेलिए शास्त्रमें लिखा है कि गर्दभपशुसे याग करके प्रायश्चित्त करे। आपके नियमके अनुसार तो अवकीर्णा-व्रतभ्रष्ट ब्रह्मचारीको यागद्वारा पवित्र करनेवाला गर्दभ सदा पवित्र ही माना जाने लग-जावेगा। अतः यह नियम नहीं है कि जो वस्तु किसी प्रसङ्गमें शुद्ध मान ली गई वह सर्वत्र शुद्ध ही हो। ऐसे ही असमर्थस्नान के लिए भस्मस्नान का विधान है तोभी वह सर्वदा शुद्ध द्रव्य नहीं है किन्तु केवल उसी प्रसंग के लिए शुद्ध हो सकता है। किंच भस्म स्वतः शुद्ध द्रव्य नहीं है अतएव शातातपजी का यह वचन भी चरितार्थ हो जाता है कि:-

मद्यं पीत्वा गुरुदारांश्च गत्वा,
स्तेयं कृत्वा ब्रह्महत्याश्च कृत्वा।
भस्मच्छन्नो भस्मशय्याशयानो,
रुद्राध्यायी मुच्यते सर्वपापैः॥

अर्थात् मद्य पीनेवाला, गुरुपत्नी के साथ मैथुन करने वाला, चोरी करनेवाला, ब्रह्महत्या करनेवाला, भस्म से भरे हुए देहवाला और भस्म के ऊपर ही सोनेवाला वेद

के रुद्राध्याय का पाठ करे तो इन पापों से छूट सकता है। (यहां पर भस्म लगाने को पाप कहा गया है।)

यह वचन भी प्रायश्चित्त का ही विधायक है।

प्रश्न—'अग्निरिति भस्म' इत्यादि मन्त्र से भस्म ग्रहण करना लिखा है। यदि यह अशुद्ध द्रव्य होता तो ऐसा क्यों विधान होता ?

उत्तर—वह विधान जो हुआ है सो केवल पाशुपत व्रत के सम्बन्ध में है, न कि सर्वत्रके लिए।................ अग्निहोत्र भस्म का ग्रहण इसलिए किया है कि कल्पसूत्रकार महर्षियों की आज्ञा न होने से भस्म क्रियाका अङ्ग नहीं बन सकता। परन्तु यदि भस्मकी अपेक्षा हो तो शुद्ध स्थलसे उसको लेना चाहिए। (अर्थात् भस्म धारण करना पाशुपत व्रतकेलिये विहित है। कोई भी भस्म किसी क्रिया में नहीं लिया जा सकता। परन्तु यदि कभी आवश्यकता पड़े तो शुद्ध स्थान से लेना चाहिये।)....................।

अथवा भस्मको भी शुद्धद्रव्य मान लिया जावे तो भी प्रमाणोंके बलसे ब्राह्मणमात्रकेलिये मृत्तिका ही प्रशस्त है। अतः 'वैष्णवैस्तु भस्म परित्याज्यमेव' वैष्णवोंको भस्म छोड़ ही देना चाहिये।

यहां यह स्मरण रखना चाहिये कि भस्मको पवित्र माननेका पक्ष लेकर ऊपर प्रश्न करनेवाले शैव स्मार्त आदि हैं और उत्तर देनेवाले श्रीरामानुजसम्प्रदाय के पक्षवाले हैं। इसी शास्त्रार्थ के प्रसङ्गमें आगे चलकर इसी सच्चरित्र रक्षामें लिखा है किः—

'त्रिपुण्ड्रधारिणो नित्यं भस्मोद्धूलनतत्पराः।
भविष्यथ त्रयीबाह्या मिथ्याज्ञानप्रलापिनः॥"
'अन्ये भस्मजटोपेता यथोक्तं गौतमात्पुरा।'
'गोवध्याकरण मद्यं यावत्पश्यति योगवित्।
ऋषीणां मायया सर्वमिति संचिन्त्य तत्र वै॥
शशाप ताञ्जटाभस्मामिथ्याव्रतधरांस्तथा॥'

इत्यादि आदित्यपुराण और वाराह पुराण से जटा-भस्म की निन्दा की गई है। उसके पश्चात् वाराहपुराणका ही एक और श्लोक लिखा है—

'कुलीनो ब्राह्मणो विद्वान् भस्मधारी भवेद्यदि।
वर्जयेत्तादृशं देवि! मद्योच्छिष्टघटं यथा॥'

अर्थात् यदि कोई कुलीन विद्वान् ब्राह्मण भस्म धारण करे तो उसे मदिराके जूठे घड़ेके समान छोड़ देना चाहिए। यह भस्मकी निन्दा उस श्रीरामानुजसम्प्रदायके

ग्रन्थमें लिखी गई है जिस सम्प्रदायमें श्रीरामानन्दसम्प्रदाय को घुसेड़नेका प्रयास किया जा रहा है।

पद्मपुराणके आदिखण्ड, ५९ अध्याय का २४ वाँ श्लोक इस प्रकार है:—

'यज्ञोपवीती शान्तात्मा कुशपाणिः समाहितः।
धौतकाषायवसनो भस्माच्छन्नतनूरुहः॥'

अर्थात् वैष्णव त्यागी यज्ञोपवीत पहिरे, शान्त होकर रहे, पूजापाठके समय हाथमें कुश रखे, सावधान रहे, धोया हुआ पवित्र काषायवस्त्र पहिरे और भस्म न लगावे।

विष्णुपुराणमें (पूरा पता स्मरण नहीं है) लिखा है कि:—

पुंसां जटाधरण मौढ्यवतां वृथैव,
मोघासिनामखिलशौच बहिष्कृतानाम्।
पिण्डप्रदानपितृतोय विवर्जितानां,
संभाषणादपि नरा नरकं प्रयान्ति॥

अर्थात् जो जटाधारी हैं, जो मुफ्तखोर हैं, जो अपवित्र रहा करते हैं और जो पितरों को पिण्डदान नहीं करते उनसे वार्तालाप करनेसे भी मनुष्य नरकमें जाताहै।

अवैष्णव उपनिषदोंमें भस्म और जटा आदि का वर्णन मिलता है वह अवैष्णवों केलिए ही है।

स्वामी श्रीअनन्ताचार्यजी की आज्ञा से प्रकाशित दुर्वादविधूनन पुस्तकमें एक स्थलमें लिखा है कि 'अस्मत्सम्प्रदायावलम्बिषु वैरागिनामकेषु बहवो भस्मधारिणो भवन्ति'। अर्थात् 'हमारे सम्प्रदायका अवलम्ब लेकर रहनेवाले वैरागी नामवालोंमें बहुतसे भस्मधारण करनेवाले होते हैं'। यहांपर भस्मधारण करनेके कारण ही अथवा श्रीरामानन्दीय होनेके कारणसे, हम श्रीरामानन्दी श्रीवैष्णवों को न तो श्रीवैष्णव लिखा गया और न वैष्णव लिखा गया। यदि स्वामी श्रीअनन्ताचार्यजी श्रीरामानन्दीय वैष्णवों को वैष्णव मानते होते तो अवश्य 'वैरागिनामकेषु श्रीवैष्णवेषु' ऐसा लिखते। परन्तु उन्होंने आज तक हमको और आपको श्रीवैष्णव नहीं लिखा है। इसी सम्प्रदायमें आपको घसेड़नेके लिए हमारे भाई लोग व्यर्थ प्रयास करते रहते हैं।

विष्वक्सेनसंहिता में लिखा है कि:—

'न धारयेज्जटाभारं भस्म चैव न धारयेत्।

'जटा और भस्मको न धारण करे।'

पुराणों तथा धर्मशास्त्रोंमें भस्मकी बड़ी निन्दा की गई है। सर्वत्र भस्मको चाण्डालके समान अस्पृश्य लिखा है। अशुद्ध भस्म तो अशुद्ध है ही है परन्तु किसी भी पवित्र कहे जानेवाले भस्मको भी शास्त्रकारोंने स्वतः शुद्ध न मान कर अशुद्ध ही माना है। जिस श्रीरामानुजसम्प्रदायमें श्रीरामानन्दसम्प्रदायको घुसेड़नेकेलिये हमारे बहुतेरे भाई धमपछाड़ कर रहे हैं उस श्रीरामानुजसम्प्रदायके विद्वानोंने भस्मको सर्वथा अस्पृश्य बताया है। यह बात ऊपर कही जा चुकी है तथा 'सच्चरित्ररक्षा' के उद्धरणसे सर्वथा सिद्ध की जाचुकी है। अब मैं प्रतिवादिभयङ्कर स्वामीश्रीअनन्ताचार्यजी के 'भस्मधारण विचार' नामक पुस्तकसे भी यह बताऊँगा कि श्रीरामानुजसम्प्रदाय में भस्म-विभूति सर्वथा अस्पृश्य वस्तु है। उन्होंने इस पुस्तकमें बहुतसे प्रमाणों को लिखकर यह सिद्ध किया है कि भस्म श्रीवैष्णवोंके स्पर्श करनेकी वस्तु नहीं है वह तामस वस्तु और शैव, पाशुपत आदि अवैदिकधर्मियोंकेलिये ही ग्राह्य है। देखिये प्रमाण वृद्धहारीतसंहिताका—

'उच्छिष्टभस्मकेशास्थि कपालं मलमेव च।
स्नानार्द्रधरणीं चैव स्पृष्ट्वा स्नानं समाचरेत्' ॥

अर्थ-जूठी वस्तु, भस्म-विभूति, बाल, हड्डी, खोपड़ी,

मल और स्नानसे भींजी हुई भूमिको छूकर स्नान करना चाहिये।

पद्मपुराणमें लिखा है कि:—

'कपालकेशभस्मास्थितुषाङ्गाराणि यत्र वै।
तत्र ते सततं स्थानं भविष्यति न संशयः॥'

'कपालकेशभस्मास्थितुषाङ्गराणि यत्र तु।
स्थानं ज्येष्ठे तत्र तव भविष्यति न संशयः॥'

'यस्य वेश्म कपालास्थिभस्मकेशादिचिह्नितम्।
वस तत्राशुभे नित्यं कलिना सह निश्चयः॥'

जब समुद्र मथा जा रहा था और सर्व प्रथम ज्येष्ठा-देवीजी बाहर आई हैं तब उनके रहने केलिये सब स्थान बताये गये हैं। संसारमें जितनी खराब चीजें हैं वही उनके रहनेकेलिये बताई गई हैं। उनमेंसे कुछ ये हैं:—खोपड़ी, केश, भस्म, तुषाङ्गार, इत्यादि। ऐसा लिखकर पद्मपुराण-कार ने भस्मको अत्यन्त निन्दित बनाया है।

पुनः पद्मपुराणके ही श्लोक देखिये:—

'कपालभस्मास्थिधरा ये ह्यवैदिकलिङ्गिनः।
ऋते वनस्थाश्रमाच्च जटावल्कलधारिणः॥
अवैदिकक्रियोपेतास्ते वै पाषण्डिनः स्मृताः॥'

अर्थ-जो लोग खोपड़ी, हड्डी, भस्म धारण करते हैं, अवैदिक चिह्नधारण करते हैं, और वानप्रस्थाश्रमके बिना जटा और बल्कल धारण करते और अवैदिक क्रियाएँ करते हैं वे पाखण्डी हैं। इसी पुराणमें इससे पूर्वके अध्यायमें यह भी लिख आये हैं कि:—

'पाषण्डिनं विकर्मस्थं पतितं श्वपचं तथा।
नावलोकेन्न संभाषेन्न स्पृशेच्चैव वैष्णवः॥'

अर्थ-वैष्णवोंको चाहिये कि भस्मादिधारी पाखण्डी को, कुकर्मीको, पतितको, और चाण्डालको न देखें, न उनसे बोलें और न उनका स्पर्श करें।

मनुमें लिखा है कि:—
'अधितिष्ठेन्न केशांस्तु न भस्मास्थिकपालिकाः।'
अर्थः-केश, भस्म, हड्डी और खोपड़ी का संपर्क नहीं करना चाहिये।

याज्ञवल्क्यने लिखा है कि:—
'विरुद्धं वर्जयेत्कर्म प्रेतधूमं नदीतरम्।
केशभस्मतुषाङ्गार कपालेषु च संस्थितिम्॥'

अर्थः-देशाचार, ग्रामाचार और कुलाचारसे विरुद्ध कर्म छोड़ दे। मुर्देके धुएँकी ओर न जावे। नदीमें न तरे।

केश, भस्म, तुषाङ्गार और कपाल को संपर्क न करे ।

विष्णुपुराणमें लिखा है किः—

'केशास्थि कण्टकामेध्यबलिभस्मतुषांस्तथा ।
स्नानार्द्रधरणीं चैव दूरतः परिवर्जयेत् ॥'

अर्थः—केश, हड्डी, कांटा, अपवित्र बलि, भस्म और तुष तथा स्नानसे भींजी हुई भूमिको दूरसे ही छोड़ देना चाहिये ।

वृद्धहारीतसंहिताके द्वितीयाध्यायमें लिखा है किः—

'न भस्म धारियेद्विप्रः परमापद्गतोऽपि वा ।
मोहाद्वै बिभृयाद्यस्तु स सुरापो भवेध्रुवम् ॥'

अर्थः—ब्राह्मणको चाहिये कि महाविपत्तिमें पड़ जाने पर भी भस्म धारण न करे । यदि अज्ञानसे विभूति धारण करले तो वह मदिरा पीनेवालेके समान अपवित्र हो जाता है ।

पराशरस्मृतिमें लिखा है किः—

'कपालकेशभस्मास्थि शुक्तिपाषाणधारिणम् ।
त्रिपुण्ड्धारिणं विप्रं चाण्डालमिव संत्यजेत् ॥'

अर्थ—खोपड़ी, केश, भस्म, अस्थि, सीप, पत्थर और त्रिपुण्ड्र धारणकरनेवाले ब्राह्मणको चाण्डालके समान छोड़ देना चाहिए ।

आदित्यपुराणमें लिखा है कि:—गौतमजीने ऋषियोंको शाप दिया कि तुमलोग अब शरीरमें भस्म लगावोगे। इससे भी भस्मकी निन्दा ही की गई है।

वाराहपुराणमें लिखा है कि:—

'शशाप ताञ्जटाभस्ममिथ्याव्रतधरांस्तथा।
भविष्यथ त्रयीबाह्या वेदकर्मबहिष्कृताः॥"

अर्थ—गौतमजीने क्रुद्ध होकर जटा, भस्म धारण करनेवाले और मिथ्याव्रतधारण करनेवाले ऋषियोंको शाप देदिया कि अब तुमलोग वेदबाह्य हो जावोगे।

भागवतमें लिखा है कि:—

'भवव्रतधरा ये च ये च तान्समनुव्रताः।
नष्टशौचा मूढधियो जटाभस्मास्थिधारिणः॥
विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र दैवं सुरासवम्॥'

अर्थ—भृगुने शाप दिया कि जो लोग शिवका व्रत धारण करते हैं, जो उनके अनुयायी हैं, वह सब शिव-दीक्षामें प्रवेश करें जहां कि मदिरा आदि चढ़ाया जाता है। शिवके अनुयायी कौन कौन हैं? इस शङ्काको करके गिनाया है कि जो 'सदा अपवित्र ही रहते हैं, मूर्ख और निरक्षर हैं तथा जो जटा और भस्म धारण करनेवाले हैं।'

... शोध संस्थान
1381

तैत्तिरीयसंहितामें लिखा है कि:—

'अग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसि'

अर्थ—भस्मकेलिये कहा गया कि 'हे तू अग्निका भस्म है। तू अग्निकी विष्ठा है।

पद्मपुराणमें महादेवजीने स्वयं पार्वतीको अकेलेमें बैठा कर बहुत धीरेसे कहा कि हे पार्वती मैं वेदोंके विरुद्ध अत्यन्त निन्दित कपाल, भस्म आदि क्यों धारण करता हूँ, सो तुमसे कहता हूं परन्तु तुम किसीसे यह बात कहना नहीं। इतना कहकर अपनी रामकहानी उन्होंने शुरू की है और कहा कि देवताओंका काम बनानेकेलिये यह अशुभ, निन्दित और वेदविरोधी भेष मैंने स्वीकार किया है।

स्वामी श्रीअनन्ताचार्यजी अपने पुस्तकमें फैसला करते हुए लिखते हैं कि "भस्मादिका धारण करना वेद-विरुद्ध है। भस्मादि धारण करना तामसजनोंका काम है। जिन ग्रन्थोंमें भस्मादिधारणकरना लिखा है वह ग्रन्थ असुरोंको मोहित करनेकेलिये लिखा गया है। भस्मादिधारणकरना शैव पाशुपत आदि वेदविरुद्धधर्मियोंका काम है। भस्मादिधारण करनेसे ब्राह्मण पतित होजाता है, अस्पृश्य हो जाता है और बात करनेके अयोग्य हो जाता है।"

एक भाईने लिखा है कि सदाशिवरहस्यमें 'वेदसिद्धेषु धर्मेषु विभूति धारणं परम्' लिखकर विभूतिधारणको वैदिक कहा गया है। मेरे पास जो सदाशिव संहिता थी उसमें थोड़ासा पाठान्तर है। यथा—

'वेदासिद्धेषु धर्मेषु विभूतिधारणं परम्।'

अर्थात् जितने अवैदिकधर्म हैं उनमें विभूतिधारण करना ही सबसे बड़ा वेदविरुद्ध धर्म है। परन्तु यदि उस भाईके लिखे श्लोकको मान लें तो भी कोई आपत्ति नहीं है। तब इतना ही मानना पड़ेगा कि वह श्लोक १० वें अध्यायका नहीं है किन्तु ११ वें अध्याय का है। उस ११ वें अध्यायमें शैवधर्मका निरूपण हुआ है। शैवधर्मियों के पक्षसे ही वहां पर यह श्लोक लिखा गया है।

उसी भाईने बृहद्विष्णुपुराणके २० वें अध्यायके दो श्लोक लिखकर तपस्वी महात्माओंको प्रसन्न करनेकेलिए विभूतिधारणका समर्थन किया है। वह दोनों श्लोक ये हैं—

'भक्तिदं मुक्तिदं भस्म वैष्णवानां विशेषतः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन विभूतिं धारयेद्बुधः॥
विकारो विष्णुरूपं च भूकारोपि पितामहः।
तिकारः शिवरूपं च विभत्येवं श्रुतौ स्मृतः॥'

दूसरे श्लोकके लिखनेमें इस भाईने इतनी भूलकी है कि ज्ञात होता है उसे संस्कृतका एक अक्षर भी नहीं आता है। अस्तु। इस भाईने ये दो श्लोक तो लिख दिये परन्तु वहां ही नीचे दो श्लोक और हैं उनपर दृष्टिपात ही नहीं किया। उसे देखते तो इतनी भूल नहीं कर सकते। उन दोनों श्लोकोंको मैं लिखे देता हूँ।

"एवं जल्पन्ति ये मूढा मिथ्याचारपरायणाः।
सपद्येव बहिष्कार्या वैष्णवेभ्यो हि ते खलाः॥
जटाया धारणं देहे विभूतेर्धारणं तथा।
अवैष्णवं मतं कर्म सत्यं सत्यं महर्षयः॥"

अब इन चारों श्लोकोंका अर्थ आप जानलें तो आप स्वयं ही समझ जावेंगे कि इन श्लोकोंसे विभूतिधारणका समर्थन नहीं होता है। अर्थ यह है—'भस्म विशेष करके वैष्णवोंको भक्ति और मुक्ति देनेवाला है। अतः विद्वान्‌को चाहिये कि सर्व प्रयत्नसे विभूतिको धारण करे। विभूति शब्द का 'वि' विष्णुरूप है, 'भू' ब्रह्मस्वरूप है, और 'ति' शिवरूप है। ऐसा श्रुतिमें कहा गया है'। इस प्रकारसे जो बड़बड़ाते हैं वह मूर्ख हैं, पाखण्डी हैं और खल हैं। इनको शीघ्र ही वैष्णवोंमेंसे पृथक् कर देना चाहिये। क्योंकि जटा रखाना और शरीरमें विभूति लगाना यह वैष्णवोंका कर्म नहीं है। हे महर्षियो! मैं सत्य ही कहता हूं।

आपने देखा कि इन श्लोकोंमें जटा और त्रिभूतिका खण्डन ही है, मण्डन नहीं है। कोई २ सौर संहिता और वायवीय संहिता के प्रमाणोंसे भी जटा और त्रिभूति धारण सिद्ध किया करते हैं परन्तु बहुत प्रयत्न करनेपर भी ये दोनों संहिताएँ अभी तक मुझे नहीं मिल सकी हैं। सैकड़ों विद्वानों ने भी अभी तक इन दोनों संहिताओं को नहीं देखा है। अतः इन दोनों श्लोकों पर तो तभी कुछ कहा जा सकता है कि जब वह भाई इन पूर्ण संहिताओंको लेकर कभी किसी विद्वत्सभामें बैठें।

एक भाईने लिखा है कि सिद्धान्तकौमुदीके कारक प्रकरणमें 'इत्थंभूतलक्षणे' सूत्रपर उदाहरण दिया गयाहै कि:–जटाभिस्तापसः। जटा ज्ञाप्यतापसत्वविशिष्ट इत्यर्थः। परन्तु यह तो छोटे २ विद्यार्थियों का बात है। जो सुना, वही कह चले। अरे भाई, इस उदाहरणसे तुम यह कैसे सिद्ध कर सकते हो कि यह प्रयोग श्रीरामानन्दसम्प्रदाय के तपस्वी महात्माओंकेलिये है ? यह कौन कहता है कि संसारमें जटा होती ही नहीं ? जटा तो अनेक रखते रखाते आये हैं। इसमें तो विवाद ही नहीं है विवाद तो यहां है कि श्रीवैष्णवोंको जटा विभूति रखानी चाहिये या नहीं। इधर उधरके उदाहरणोंसे सम्प्रदायकी रक्षा नहीं की जा सकती। इसके लिये मौलिक आधार चाहिए। किंच यदि

कौमुदीके 'जटायिस्तापसः' इस उदाहरणसे जटा केश तपस्वियोंका चिह्न माना जावे तो प्रौढमनोरमाके 'भिक्षितुंजटाः' इस प्रयोगसे जटा भिखमंगोंका चिह्न क्यों न मान ली जावे? और तब यह भी सिद्ध हो जावेगा कि जटा भिखारी रखाया करते हैं। अतः मेरे भाई! कौमुदीके नामसे पण्डिताई प्रकट करना व्यर्थ है। शास्त्रीय और धार्मिक तथा साम्प्रदायिक व्यवस्था तुम्हारे हाथकी वस्तु नहीं है।

'सुवीरोऽसि सुधीरोऽसि दर्शनीयोऽसि वत्सक!
यस्मिन् कुलेत्वमुत्पन्नस्तत्र सिंहो न हन्यते ॥'

यही उत्तर भगवानके जटाधारणके लिये भी है। भगवान् श्रीरामानन्दीय साधु होकर जङ्गलमें नहीं गये थे। वह तपस्वी होकर भी नहीं गये थे। वह तो दुष्टों का संहार करनेकेलिये गये हुये थे। अतः उनकी जटासे श्रीवैष्णवोंकी जटाका कोई सम्बन्ध नहीं है।

भरतजी केलिये भी यही उत्तर है। वह त्यागी नहीं थे। विरक्त नहीं थे। श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव नहीं थे। मैं भूला। अरे वह श्रीरामानुजीय श्रीवैष्णव नहीं थे। और यह भाई साहेब तो श्रीरामानुजीय श्रीवैष्णवोंको जटाविभूति धारण करनेकी बात कर रहे हैं। तब अन्य सम्प्रदाय,

अन्य धर्म और अन्य जातिके उदाहरणसे अन्यकी सिद्धि कैसे हो सकती है ?

लवकुशकेलिये भी यही उत्तर है। कौन सिद्ध कर सकता है कि लवकुश श्रीरामानुज सम्प्रदायके विरक्त तपस्वी महात्मा थे ?

कोई २ भाई सिद्धान्तपटलको श्रीरामानन्दस्वामीजी का बनाया हुआ मानकर उसीसे जटाविभूति सिद्ध कर चलते हैं। यह भी निरी मूर्खता ही है। अब तो मेरे विपक्षियोंने भी यह मान लिया है कि रामानन्दस्वामीजीने हिन्दीभाषामें कोई पुस्तक नहीं लिखा है। जयपुरके बालानन्दस्वामीजीके गादीधर स्वामी श्री कृष्णानन्दजो महाराज ने भी अपने वैष्णवमताब्जभास्करमें प्रकाशित किया है कि श्रीरामानन्दस्वामीजी के बनाये हुए दो ही ग्रन्थ हैं। एक श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर और दूसरा श्रीरामार्चन पद्धति। वह तो आनन्दभाष्यको भी श्रीस्वामीजीका बनाया हुआ प्रकाशित नहीं करते हैं। तब जब एक गादीके स्वामीजी ही सिद्धान्तपटलको न मानें तो मेरे माननेकी तो बात ही दूर रही। अच्छा, यदि स्वामीजीको जटाविभूति धारण इष्ट था तो उन्होंने श्रीवैष्णवमताब्जभास्करमें इसका उल्लेख क्यों नहीं किया ? अतः सिद्धान्तपटल तो स्वामीजीका

ग्रन्थ नहीं है। किसी भी विद्वानने आज तक इसे स्वीकार नहीं किया। मैंने इसे बांचा है। मैं तो समझता हूं कि सिद्धान्तपटलको किसीने ऐसे ही संग्रह कर दिया है। क्योंकि उसमें ऐसी बातें भी हैं जो कि श्रीवैष्णवों में न कभी थीं और न आज हैं। भला, ऐसा कैसा आचार्य, जो ऐसी बात लिख जावे कि जो कभी उसके शिष्य मानें ही नहीं ?

उत्तरपीठिका।

पूर्वपीठिकामें मैंने उन सब प्रमाणोंको उद्धृत कर दिया है जिनसे कि जटा और भस्मधारणका निषेध किया जाता है। कुछ भाइयोंके प्रामाण प्रमाणोंपरभी थोड़ा बहुत विचार हो चुका। अब विचार यह करना है कि यदि जटा और भस्म शास्त्रोंमें नहीं हैं तब क्या यह अवैदिक ही अथवा अशास्त्रीय ही वस्तु है ? क्या इनका धारण करना योग्य नहीं? क्या इनके धारण करनेमें कोई प्रत्यवाय या पाप होता होगा ? क्या इनके धारण करनेसे श्रीसम्प्रदायको कोई आघात पहुँचता होगा ?

इन प्रश्नोंका उत्तर शान्तिसे विचारना चाहिए। जटा और भस्म यदि शास्त्रोंमें या वेदोंमें श्रीवैष्णवोंकेलिए न

निकलें तो इससे हानि ही क्या है ? वैदिकता और अवैदिकता उन कार्योंकेलिए देखी जाती है जिनका सम्बन्ध धर्मके साथ हो । जटा रखानेसे धर्म उत्पन्न होता है और नहीं रखानेसे नहीं होता यह दोनों बातें नहीं हैं । एवं जटा न रखनेसे अधर्म होता है और रखानेसे नहीं होता यह दोनों बातें भी नहीं हैं । यही बात विभूतिकेलिये है । धर्माधर्मका सम्बन्ध अन्तरात्माके साथ हुआ करता है । जटा और विभूति का सम्बन्ध स्थूल शरीरके साथ है। अतः यदि शास्त्रोंमें इसकेलिये कोई विधि न मिले तो भी इनके रखानेमें कोई क्षति नहीं है । परन्तु तब एक बात विचारनेकेलिये रह जाती है । विधि न हो, इससे तो कोई हानि नहीं परन्तु जब वे सब निषेधवचन उपलब्ध हो रहे हैं जो कि पूर्वपीठिकामें दिये गये हैं तब तो निषिद्ध वस्तुके आचरण करनेसे प्रत्यवाय अवश्य लगेगा। इसका उत्तर । पूर्वमें जितने निषिद्ध वचन दिये गये हैं वह सब प्रायः भस्मसे ऊर्ध्वपुण्ड्र करनेका निषेध करते हैं । अर्थात् जिस प्रकारसे श्वेतमृत्तिकासे हम ऊर्ध्वपुण्ड्र करते हैं वैसे ही भस्मसे नहीं कर सकते। अतः भस्मसे ऊर्ध्वपुण्ड्र करना ही शास्त्रनिषिद्ध है और वही श्रीवैष्णवसदाचारविरुद्ध है। देहमें भस्म लगाने का न तो कहीं विधि है और न निषेध है । जिसमें विधि निषेध न हो उसके न करनेमें कोई पाप नहीं होता और

करनेमें कोई पुण्य नहीं होता। परन्तु उनका सम्बन्ध धर्माधर्मसे न हो तो। जिनका सम्बन्ध धर्माधर्मसे होता है उनके करने न करनेमें तो पुण्य पाप अवश्य होने रहते हैं। अतः यदि कोई विरक्त वैष्णव विरक्तता प्रदर्शित करनेकेलिये जटाभस्म रखते हों तो ग्रान्थिक कोई भी आपत्ति नहीं प्रतीत होती।

दूसरा प्रश्न। इनका धारण करना योग्य है वा नहीं? योग्यता और अयोग्यता नियत वस्तुकेलिये विचारी जा सकती है; परन्तु जो वस्तु ऐच्छिक है-अपनी इच्छा पर निर्भर है उसकी योग्यता और अयोग्यता का विचार ही अयोग्य है। सत्य बोलना योग्य है या अयोग्य, यह विचार किया जा सकता है। क्योंकि सत्यभाषण प्रतिपुरुष का नियत धर्म है। सत्य भाषण ऐसी वस्तु नहीं है जिसे इच्छापर छोड़ दिया जावे। सत्य न बोलनेसे अधर्म होता ही है। जटा, भस्म ऐसी वस्तु है कि जिसके न धारण करनेवाले सहस्रों श्रीवैष्णव पतित गिने जा सकें। अतः जो धारण करनेके उत्कट अभिलाषी हों और वह उत्कट अभिलाष लोकवञ्चना और दामकेलिये न हो प्रत्युत आत्मकल्याण और हृदयसन्तोषकेलिये हो तो उनकेलिये इन दोनों वस्तुओंका धारण करना योग्य ही है। जिनके

हृदयमें इन वस्तुओंके लिये अभिलाष नहीं है अथवा केवल लोकवञ्चना, आत्मवञ्चना और दामकेलिये इनका रखना आवश्यक समझा जाता हो तो वह सर्वथा अयोग्य है। विरक्तवेष सदा विरक्तिकेलिये ही होना चाहिये। व्यापार केलिये यदि वेष बनादिये जावें तो वेषका माहात्म्य नष्ट हो जावेगा और त्यागस्वरूप सदाकेलिये जगतसे उठ जावेगा। अथवा तो रूपान्तर हो जावेगा। व्यापारी साधुकेलिये ही श्री तुलसीदासजीने लिखा है:—

मिथ्यारंभ दंभ-रत जोई। ता कहँ सन्त कहैं सब कोई ॥
सोइ सयान जो परधनहारी। जो करु दंभ सो बड़ आचारी ॥
निराचार जो श्रुतिपथ त्यागी। कलियुग सोइ ज्ञानी वैरागी ॥
जाके नख अरु जटा बिशाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥
गुरु शिष अंध बधिरकर लेखा। एक न सुनै एक नहिं देखा ॥
हरै शिष्यधन शोक न हरई। सो गुरु घोर नरक महँ परई ॥
नारि मुई घर सम्पति नासी। मूड़ मुड़ाय भये संन्यासी ॥
बहु दाम सँवारहिं धाम यती। विषया हरि लीन्ह रही विरती ॥
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही ॥

गोसाईंजीने जो फोटो साधुओंका खींचा है वह सच ही होना चाहिये। क्योंकि मेरे सिवाय सभी लोग मानते हैं कि गोसाईंजीकी सभी बातें दूधकी धोई हुई हैं। तब

तो गोसाईंजी कहते हैं कि आजकलह जिनका नाम भक्त साधु हो, समझो कि वह सब मिथ्याचारी और दम्भी हैं। जो आचार शून्य हो और वेदमार्गत्यागकर चलनेवाले हों वही ज्ञानी और वैरागी साधु हैं। जिनके बड़े २ नख हों और बड़ी २ जटाएँ हों वही कलियुगके पसिद्ध तपसी हैं। कलियुगके गुरु और चेले दोनों अन्धे और बहिरे हैं। आज कलहके गुरु शिष्यका धन तो हर लेते हैं परन्तु उसके दुःखको नहीं हरते। जब घरमें स्त्री मर जाती है और खाने को दाना नहीं मिलता तो मूड़ मुड़ाकर साधु बन जाते हैं। त्यागी लोग खूब पैशा इकट्ठा करते हैं और घर सँवारते हैं। तपस्वी धनिक होते हैं और सद्गृहस्थ दरिद्र होते हैं। गोसाईं जीने भरपेट साधुओंकी निन्दा की है परन्तु कोई साधु क्रोध नहीं करता है। गोसाइंजीको कोई निन्दक नहीं कहता। शायद सब समझ जाते होंगे कि विचारे ठीक ही कह गये हैं। अस्तु।

तीसरा प्रश्न। तीसरे प्रश्नका भी उत्तर द्वितीय प्रश्नके उत्तर से गतार्थ हो जाता है। अर्थात् जटा भस्म धारण करनेसे कोई पाप नहीं लगता। क्योंकि पाप पुण्यका सम्बन्ध अन्तरात्मासे है, न कि जटा भस्मसे।

चौथा प्रश्न। इस चौथे प्रश्नके उत्तरमें त्यागी और

तपस्वी महात्माओंको मैं थोड़ासा क्रोधी बनाऊँगा। उनके क्रोधको मैं सह लूंगा परन्तु कहनेकी बात अवश्य कहूँगा। जटा और भस्म धारण करनेसे तो श्रीसम्प्रदायकी कोई हानि होती आज नहीं दीखती है परन्तु इन दोनों वस्तुओं के साथ २ एक तीसरी वस्तु चल रही है उससे श्रीसम्प्रदायकी अपार हानि हो रही है। वह तीसरी वस्तु है- धूमपान। यह रोग जटा और भस्मके साथ २ बड़े वेगसे बढ़ता जा रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि, यदि यह इसी प्रकार वेगवान् होता गया तो, वह दिन बहुत दूर नहीं है जब सब कहेंगे कि जटा और भस्म त्याज्य वस्तु है। जटा और भस्म अनाचारकेलिये नहीं होना चाहिये यह मैं प्रथम ही कह आया हूं। जटा और भस्मके कारण वैष्णवताका नाश नहीं होना चाहिये। आज हम देखते हैं कि विभूतिधारी महात्मा ऊर्ध्वपुण्ड्र नहीं करते हैं। कण्ठो या हीरा भी अब कण्ठसे निकल गया और माथे तक पहुंचा है। अब कण्ठी का नाम कण्ठी न रह कर मत्थी हो गया है क्योंकि अब वह माथेमें रहने लग गई है। तपस्वी महात्मा जहां चाहते हैं वहां ही—चाहे कितनी भी मलिन भूमि क्यों न हो—आसन डाल देते हैं। लकड़ियों केलिये सदा लाठी चला ही करती है। ये लकड़ियां इसी लिये चाहिये कि चिलम भरनेमें देर न हो। यही सब थोड़े

से दोष हैं। यदि ये दोष तपस्वियोंमेंसे निकल जावें तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये तपस्वी श्रीसम्प्रदायके सुन्दर भूषण बन जावेंगे।

जब तपस्वी महात्माओंने इतना बड़ा त्याग कर रखा है तो चिलम और लकड़ियों के त्यागमें विलम्ब न होना चाहिये। भारतवर्षमें चिलम शूद्रोंके हाथकी वस्तु रही है। वह महात्मा कहे जानेवालोंके हाथमें शोभा नहीं देती है। यह सब भ्रम है कि चिलमसे ब्रह्मर्य्य सुरक्षित रहता है, या देश २ का पानी नहीं लगता या ठंडी नहीं लगती। यह भ्रम मिट जावेगा तो चिलम अपने आप छूट जावेगी। चिलमके छूटते ही सायं प्रातः लकड़ियोंकी चिन्ता मिट जावेगी। ठंडको तो यह तपस्वी महात्मा जीत चुके हैं। चिलमकेलिये ही लकड़ी सुलगती रहनी चाहिये। मैं आशा करता हूं कि पुराने तपस्वी महात्मा तथा नये समझदार तपस्वी भाई इस रोगको शीघ्र से शीघ्र दूर भगानेमें सयत्न होंगे और इस प्रकारसे श्रीसम्प्रदायकी बड़ीसे बड़ी सेवा हो सकेगी।

उपसंहार

मनुजीने लिखा है कि:—

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

अर्थात् पूर्वज सत्पुरुषोंका जो आचार है वह भी एक प्रकारका धर्म ही है। जिसके अनुष्ठान करनेसे साक्षात् वा परम्परया निःश्रेयससिद्धि होती है उसे धर्म कहते हैं। जिसके अनुष्ठान करनेसे साक्षात् वा परम्परया निःश्रेयस-विनाश होता है उसे अधर्म कहते हैं। जैसे जटाभस्मकेलिये ऊपर लिखा जा चुका है कि गांजा, तमाखू, भांग, अफीम, सुलफा आदि यदि जटाभस्मके कारण तपस्वी महात्माओंमें आते हों तो वह जटाविभूति परम्परया अधर्मका हेतु है। यदि जटाविभूतिसे त्याग, वैराग्य, जितेन्द्रियता, क्रोधत्याग, निर्ममता, अहङ्काराभाव आदि सद्गुण बढ़ते हों तो वह परम्परया धर्मका हेतु है। जटाविभूति सत्पुरुषोंसे चला आता हुआ अपना कौलिक आचार है। उसे त्याग देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता केवल उसकी मर्यादाके रक्षण की है। 'येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः' के अनुसार यदि हम धर्मपूर्वक जटाविभूति का निर्वाह करेंगे तो हमारा नाश नहीं होगा प्रत्युत कल्याण ही होगा। परन्तु यदि हम जटाविभूति या इससे भी कोई उत्तम वस्तु धारण करते हुये भी धर्मका नाश करेंगे तो वह धर्म भी हमें मार डालेगा। अतः सब प्रकारसे धर्मपा-

साधनमें ही तत्परता होनी चाहिये। केवल जटाविभूतिसे ही न हम कृतार्थ होंगे न हमारा सम्प्रदाय कृतार्थ होगा। इसके साथ २ विद्या और ज्ञान अत्यन्त अपेक्षित हैं। विभूति और जटाधारी महात्मा यदि विद्याके अभ्यासी बनें, शान्त रहना सीखें, क्रोधका सर्वथा परित्याग करदें, गालीको अलग फेंकदें और नशाकी सब चीजें छोड़ दें तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि वह हमारे सम्प्रदायमें दैवी सम्पत्ति माने जानेके योग्य हैं। परन्तु यदि यह सब दुर्गुण बना ही रहा तो न तो जटा कल्याण करेगी और न विभूति और ना ही आपकी मिथ्या प्रशंसा करने वाले चापलूस। हमारा कल्याण तो हम स्वयं कर सकते हैं। हम जब अपना कल्याण करना चाहेंगे तो प्रभु की प्रेरणा हमें प्राप्त होगी यह दूसरी बात है। परन्तु प्रथम पादविक्षेप हमें ही करना पड़ेगा।

हमारे तपसी भाई अपने विरुद्ध कुछ लिखा हुआ देखते हैं तो झट उसे फाड़ चलते हैं। इससे तो किसी का भी भला नहीं होसकता। पढ़कर विचारना चाहिये कि इसमें सत्य कितना है और असत्य कितना; हेय कितना है और उपादेय कितना। दूसरों के मुखसे अपनी निन्दा सुनकर आप क्रोध करना छोड़ दें। आप यह इच्छा भूल जावें कि आपकी सब प्रशंसा ही करें। आप यह निश्चय

ही समझिये कि जो आपके मुखपर आपकी प्रशंसा करता है वह आपका शत्रु है। प्रशंसा का सुनना बड़ा भारी घातक रोग है। व्यर्थ में प्रशंसा करने और प्रशंसा सुनने की जिसे बीमारी लग गई उसका सर्वनाशही समझिये। अतः आप तो अपनी निन्दा ही सुनने की इच्छा रखिये। इस निन्दाश्रवणसे हमारे सुधरने का हमें अवसर मिलता है। हम अपनी दृष्टिमें तो निखिल ब्रह्माण्डमें एक ही महान् पुरुष होसकते हैं परन्तु हमारे शत्रु और हमारे विरोधी तथा हमारे अन्य हितैषी मित्र और उदासीन सब ही जब हमें महापुरुष कहें तब हमारा कल्याण होता हुआ समझना चाहिये। प्रतिष्ठालोलुप, स्वास्थपरायण चापलूसों से सदा बचते रहियेगा।

एक बात मुझे और कह देना चाहिये। जटा भस्म का जो मैं समर्थन कर रहा हूँ वह अपनी ओरसे करता हूं। शास्त्रों के आधार पर उसका समर्थन नहीं हो सकता। जो लोग शास्त्र की प्रत्येक बातको सत्य मानते हों और शास्त्रों पर ही पुण्यपाप का आधार मानते हों उन्हें जटा भस्मका धारण करना छोड़ ही देना चाहिये। जो लोग शास्त्रों से स्वतन्त्र होकर बिचार कर सकते हों या स्वतन्त्र विचार करने की आवश्यकता समझतेहों वह लोग अपना कौलिक धर्म समझकर जटा भस्म धारण कर सकते हैं।

मुझसे भी यदि कोई जटा भस्मधारण करने के लिये श्री वैष्णवमान्य शास्त्रों का प्रमाण पूछे तो मैं नहीं बता सकता हूं। मैं भी स्पष्ट कह दूंगा कि शास्त्रों के अनुसार तो जटा विभूतिधारण में दोष ही है परन्तु कुछ दिनों से विरक्त वैष्णव धारण करते आये हैं अतः अपने गुरुओं के मार्ग पर चलने के आग्रही जनों के लिये जटाभस्मधारण अनुचित नहीं है। इससे अधिक साम्प्रदायिक उत्तर मेरे पास नहीं है।

सम्प्रदायके नियमों को आग्रह के साथ पालन करने पर न किसी आक्षेप की संभावना रहती है और न किसी उत्तर की आवश्यकता रहती है। अतः यदि हमें प्रश्नोत्तर के झगड़े से बचना चाहिये तो सात्त्विक, पवित्र और आदर्श जीवन व्यतीत करना चाहिये। अपने सम्प्रदाय के नियमोंका पालन करने पर ऐसा उत्तम जीवन अपने आप ही प्राप्त हो जावेगा।

1381

शुभम् भूयात

अयोध्या